भारतीय ज्ञान परम्परा इस देश के मिजाज में है

दीपक कुमार गोंड

सहायक आचार्य, क्राइस्ट एकेडमी, इंस्टीट्यूट फॉर एडवांस्ड स्टडीज, बेंगलूरु.

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.15795926

ABSTRACT:

अति-आधुनिक, मिश्रित (भारतीय-पाश्चात्य) ज्ञान प्रणाली व सभ्यता के व्यापक विकास के साथ हम इतनी दूर चले आए कि आज जब भी हम पीछे मुड कर देखते हैं तो लगता है कि जैसे भारतीय ज्ञान परम्परा या प्रणाली जैसी अवधारणा हमारे समाज में कभी थी ही नहीं और अगर थी भी तो उसे हम अपनी अज्ञानता, संकुचित परम्परा एवं असभ्यता का प्रतीक मान कर मुँह फेर लेते हैं। जबकि वही हमारे ज्ञान, गौरव और सभ्यता की निशानी थी। जिसे आज भी कुछ जातियाँ व सम्प्रदाय अपनी साँस्कृतिक धरोहर के रूप में, अपने पुरखों के सम्मान के रूप में सुरक्षित रखे हुए हैं। भारतीय ज्ञान प्रणाली को समझना अपनी भारतीयता के सम्मान के प्रति सच्ची निष्ठा एवं प्रेम को समझना है। अगर हम भारतीय होने पर जरा भी सचेत नहीं हैं तो इस विषय पर आगे बात करना या पढ़ना बिलकुल व्यर्थ परिश्रम सा प्रतीत होगा। अतः यह जरूरी है कि हम इस विषय पर विचार करने से पूर्व अपने हृदय में अपने देश या संस्कृति के प्रति एक सकारात्मक व अन्वेषण दृष्टिकोण से अपने भारतीय ज्ञान की विरासत का अवलोकनार्थ अध्ययन करते रहना होगा।

हम जानते हैं कि विश्व में ज्ञान प्रणाली के विविध रूप हैं। ज्ञान प्रणाली के द्वारा मनुष्य भौतिक तथा बौद्धिक सामाजिक क्रियाकलाप करके अनुभव जगत के द्वारा वस्तुनिष्ठ गुणों और संबंधों, प्राकृतिक और मानवीय तत्त्वों के बारे में अभिव्यक्ति करता है। ज्ञान दैनंदिन तथा वैज्ञानिक हो सकता है तथा समाज में ज्ञान की मिथकीय, कलात्मक, धार्मिक तथा अन्य कई अनुभूतियाँ भी होती हैं। सैद्धांतिक रूप में सामाजिक-ऐतिहासिक स्थितियों में मनुष्य के क्रियाकलाप की निर्भरता को प्रकट किए बिना ज्ञान के महत्त्व को नहीं समझा जा सकता है। साधारण शब्दों में कहें तो 'अनुभव की अनुभूति ही ज्ञान कहलाता है।' लेकिन अनुभूति मात्र से ही ज्ञान का विकास संभव नहीं होगा, क्योंकि ज्ञान परम्परा मानव समाज में प्राचीन काल से चली आ रही परम्परा है। ज्ञान के उद्भव से लेकर मानव सभ्यता के विकास तक इस परम्परा ने अपनी निरन्तरता को बनाए रखा है। मानव सभ्यता जैसे-जैसे विकास करती गई, वैसे-वैसे यह परम्परा वैज्ञानिकता की दृष्टि से भी विकसित होती गई। लेकिन आज के दौर में या हमारी आधुनिक ज्ञान प्रणाली के विकास में भारतीय ज्ञान प्रणाली की अलग

से चर्चा कराने की आवश्यकता क्यों महसूस की जाने लगी है? क्या इस प्रणाली से हम कोई नई परम्परा विकसित करना चाहते हैं या इस प्रणाली के बहाने इतिहास का शव परीक्षण करना चाहते हैं। यह हमें तय करना होगा। क्योंकि भारतीय ज्ञान प्रणाली न तो कोई नई ज्ञान प्रणाली है और न ही इसके द्वारा किसी गड़े मुर्दे को उखाड़ने की बात हो रही है बल्कि हम मानव सभ्यता के विकास में इस ज्ञान परम्परा के कई अंतर्विरोधों को स्पष्ट करते हुए अपनी भारतीयता की अवधारणा को वैश्विक पटल पर अवस्थित करना चाहते हैं।

यहाँ हम एक ऐसी परम्परा को भी देख सकते हैं जो ज्ञान की परम्परा के साथ-साथ विकास की है और वह परम्परा मनुष्य-मनुष्य के बीच सम्प्रेषण के रूप में इस्तेमाल होने वाली वाचिक परम्परा की भाषा है। वाचिक परम्परा भारतीय ज्ञान परम्परा के मिजाज में है, जिसका विकास साथ-साथ चला है और जिसकी चर्चा यहाँ करना भी अनिवार्य होगा। हम वाचिक परम्परा के सहारे भारतीय ज्ञान परम्परा को स्पष्ट एवं गहरे स्तर पर समझ सकते हैं।

KEYWORDS:

भारतीय, ज्ञान, वाचिक, परम्परा, प्रणाली, सभ्यता, संस्कृति, आदिवासी, भाषा, ऐतिहासिक, दर्शन, देश, समाज, ग्रन्थ, प्राचीन.

भारतीय ज्ञान परम्परा के वाचिक स्वरूप और इसकी विकास यात्रा को देखना है तो हमें सर्वप्रथम दुनिया भर के रचित आदि स्रोत ग्रंथों, धार्मिक ग्रंथों (बाइबिल, कुरान, गीता आदि), साहित्यिक ग्रंथों, लोक कलाओं, कथाओं, गीतों एवं शिक्षण संस्थानों के अलावा भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य एवं उनमें व्यक्त दृष्टिकोण के आधार पर भारतीय ज्ञान परम्परा के अस्तित्व एवं विकास को देखना होगा। स्वयं वाचिक परम्परा की शुरूआत भी हमारे भारतीय ज्ञान परम्परा के प्रथम चरण के रूप में ही माना जाएगा।

वाचिक परम्परा से अभिप्राय ''अहंमेवस्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिस्त मानुषेभिः। यं कामयेतं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्मणां तमृषिं तं सुमेधाम् ।।"[1] वाक् तत्त्व या भाषा ही वह दिव्य ज्योति है जो मानव को ऋषि, देवता या विद्वान बनाती है। सबसे पहले वाचिक शब्द संस्कृत में मिलते हैं जिसका अर्थ है 'भाषण' या 'वाक्' कहने से समूचे भाषा समाज का बोध होता है। विद्यानिवास मिश्र के अनुसार वाचिक परम्परा के मुख्य अभिलक्षण दो हैं–"पहला है वाक् की अमोघ शक्ति में अटूट विश्वास.. दूसरा अभिलक्षण है वाक् की परिशुद्धता की चिंता।"[2] वाचिक परम्परा के संबंध में विष्णु खरे कहते हैं कि- "वाचिक

परम्परा उच्छल निबद्ध और स्वच्छंद होती है।...उसकी प्रकृति में सामूहिकता होती है उसमें एक निडरता होती है और बौद्धिकता से मुक्ति। वह मनोरंजन करती है और सीख भी देती है। लोक और शास्त्र वाचिक और लिखित के बीच आत्यंतिक अंतर न भी किया जा सकता हो फिर भी लोक और वाचिक के निर्माण में जनता की भागीदारी सीधी, हस्तक्षेपकारी मुखर और निर्भात होती है।"[3] कुल मिलाकर मानव सभ्यता के विकास में वाचिकता का स्थान महत्त्वपूर्ण होने के साथ-साथ सर्वोपरि भी है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी हम भारतीय ज्ञान परम्परा एवं उसके वाचिक स्वरूप को समझ सकते हैं।

लोक-साहित्य एवं संस्कृति के विशेषज्ञ स्टेफी टेरेसा मुर्मू ने कहा है कि "मानव इतिहास को जीवित रखने में लिखित के अलावा मौखिक यानी वाचिक व्यवहार परंपरा का बड़ा योगदान रहा है।"[4] आज जब हम पुरातत्व स्रोतों के द्वारा मानव सभ्यता के इतिहास को देखते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि सभ्यता विकास की प्रक्रिया में मात्र दो-चार दिन, महीना या साल नहीं लगा बल्कि इसे निर्मित होने में कई सौ, हजार साल लगे हैं। अक्षरों का पहला सबूत चीन में 1400 ई.पू. और आकृतियों या चित्रों का सबूत सबसे पहले दक्षिणी फ्रांस की लास्कू गुफाओं में मिला। अब इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि वाचिक रूप में बोल-चाल व्यवहार की परंपरा उससे भी पहले मौजूद रही होगी। जिसका सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप भारत में मिलता है।

ऐसा माना जाता है कि 56 लाख वर्ष पहले पृथ्वी पर ऐसे प्राणियों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्हें हम मानव कह सकते हैं। जिसने आगे चलकर अपनी अभिव्यक्ति के लिए वाचिक और फिर लिखित भाषा के इस्तेमाल से ज्ञान परम्परा का विकास किया। वैश्विक ज्ञान परम्परा में दुनिया के सभी पवित्र ग्रंथों में मानव जीवन की उत्पत्ति एवं उसके विकास को क्रमिक ढंग से उल्लेखित किया गया है। 'वेद', 'उपनिषद्', 'गीता', 'बाइबल', 'कुरान' में मानव जीवन के व्यवहार, रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, ज्ञान-विज्ञान, कर्मकाण्ड, पहनावा, जीवन शैली, आदि का वर्णन मिलता है। इन सभी धर्म ग्रंथों में ज्ञान की बातें लिखी गई हैं। आज भले ही मानव सभ्यता के इतिहास को जीवाश्मों, पुरातत्वों के साक्ष्यों की कसौटी पर परखा व जाँचा जाता है, लेकिन इसकी शुरूआत धर्मग्रंथों व शास्त्रों में वर्णित मानव जीवन और धार्मिक विचारों की कसौटी से जाना-परखा गया। पहले-पहल सभी धर्मशास्त्र उपदेशात्मक थे और इस उपदेशात्मक पद्धति की अभिव्यक्ति भी मौखिक शैली के रूप में थी। हिन्दू, जैन, बौद्ध, ईसाई, मुस्लिम, सिख आदि धर्मों के अभिव्यक्ति का माध्यम मूलतः वाचिक ही था।

भारतीय ज्ञान परम्परा के रूप में हम पाते हैं कि हिन्दू धर्म की श्रुति परम्परा, चारों वेद, उपनिषद के अलावा भगवद्गीता आदि प्रथमतः अपने वाचिक स्वरूप में ही थे। गीता

में श्री कृष्ण के द्वारा अर्जुन को दिए गए उपदेश कोई लिखित धर्मग्रंथ का वाचन नहीं था। बल्कि ये पूरी तरह से संवाद प्रक्रिया पर आधारित था। गीता में तीन प्रकार के तप की बात कही गई है- शारीरिक तप, वाचिक तप और मानसिक तप। 'श्रीमद्भागवत् गीता' की मूल रचनाभूमि महाभारत का युद्ध स्थल है जहाँ दो सेनाएं (कौरव और पांडव) आमने-सामने हैं। गीता में 'उवाच' शब्द बार-बार आया है संजय, धृतराष्ट्र, अर्जुन, कृष्ण उवाच अर्थात् ये सभी चरित्र बोल रहे हैं, संवाद कर रहे हैं। विघानिवास मिश्र कहते हैं कि- "सभी पुराण, सभी कथाएँ, समस्त आगमशास्त्र, समस्त शिल्पशास्त्र, कलाशास्त्र, समस्त स्मृतियाँ, समस्त धार्मिक वाङ्गमय (ब्राह्मण, बौद्ध या जैन जो भी हों) संवाद के रूप में यदि बोले गए तो निश्चय ही संवादों की एक श्रृंखला ने प्रेरित किया होगा वाचिकता से सीधा तात्पर्य बोलने से है।"[5] 'श्रुति' हिन्दू धर्म के सर्वोच्च और सर्वोपरि धर्म ग्रंथों के समूह को कहा जाता है। श्रुति का शाब्दिक अर्थ है- सुना हुआ, यानी ईश्वर की वाणी जो प्राचीन काल से ऋषियों द्वारा सुनी गई थी और शिष्यों के द्वारा सुनकर जगत में फैलाई गई थी। ऋग्वेद में वर्णित है-'देवीं वाचमजन्यंत देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति', अर्थात् वाग्देवी (भाषा) को देवों ने उत्पन्न किया और उसे सभी प्राणी बोलते हैं। इसके अलावा 14 माहेश्वर सूत्र शिव के डमरू से उत्पन्न माने जाते हैं। इस दिव्य स्रोत के कारण इन्हें धर्म का सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत माना गया है। इनके अलावा अन्य ग्रंथों को स्मृति माना गया जिसका अर्थ है मनुष्यों के स्मरण और बुद्धि से बने ग्रंथ जो वस्तुतः श्रुति के ही मानवीय विवरण और व्याख्यान माने जाते हैं। श्रुति में चार वेद हैं-'ऋग्वेद', 'सामवेद', 'यजुर्वेद' और 'अथर्ववेद'। ये चारों वेद काव्यात्मक, गद्यात्मक एवं संगीतात्मक मंत्रों से मिलकर बने हैं। हर वेद के चार भाग हैं- संहिता, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक और उपनिषद। वेदों को पहले लिखा नहीं जाता था। इनको गुरु अपने शिष्यों को सुनाकर याद करवा देते थे और इसी तरह परम्परा चलती थी।

'वेद' शब्द संस्कृत भाषा के विद् धातु से बना है अर्थात् ज्ञान के ग्रंथ। वेद हमारी विरासत, संस्कृति का स्रोत हैं तथा हमारी मूल्य प्रणाली की नींव का निर्माण करते हैं। वेदों में निहित विचार वास्तव में परोपकारी संदेश हैं जो केवल व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के कल्याण तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि वे सार्वभौमिक बंधुत्व की भावना भी व्यक्त करते हैं। यूनेस्को ने वेदों को 'वाचिक धरोहर' के रूप में मान्यता दी है। इसके अलावा भारत में वैदिक शिक्षाओं की प्राचीन भारतीय परम्परा मुख्य तौर से गुरू-शिष्य परम्परा की नींव पर आधारित थी। प्राचीन भारत में सभी विघाएँ आवासीय विश्वविघालयों अथवा गुरुकुलों में पढ़ाई जाती थी। जिसमें तक्षशिला, विक्रमशिला, नालन्दा और ओदंतपुरी दक्षिण में 'गोदावरी', कृष्णा नदियों के साथ 'नागार्जुनकोंडा', 'अमरावती' में अनेक शिक्षा केन्द्र थे। जिसमें देश-विदेश के विघार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। राजशेखर

ने विद्या स्थलों के संबंध में 'काव्यमीमांसा' में एक आप्तवाक्य कहा है-''विद्यास्थानानां गंतुमन्तं न शक्तो जीवेद्वर्षाणा योअपि साग्रं सहस्रम् ।''[6]

प्रोफेसर बिंटरनिट्ज मानते हैं कि-''वैदिक साहित्य का रचनाकाल 2000-2500 ई.पू. हुआ था। इससे पहले वेद वाचिक परम्परा द्वारा संरक्षित रखे गए थे। वाचिक परम्परा जो एक पीढ़ी दर पीढ़ी पिछले सात हजार ईस्वी पूर्व से चली आ रही है। अर्थात् यह कि आज से कम से कम 12 हजार वर्ष पूर्व वेद ज्ञान को प्रमुख चार ऋषियों ने अपने शिष्यों को सुनाया। ये चार ऋषि थे अग्नि, वायु, अंगिरा और आदित्य।''[7] भारत के दार्शनिक, चिंतक अधिकतर वैदिक कालीन ऋषि, महात्मा, मुनि एवं आचार्य आदि थे। इनके यहाँ व्याख्यान शास्त्र की जगह एक-दूसरे से शास्त्रार्थ करने की परम्परा थी। जो अधिकतर देवस्थलों, शिविरों, विदग्ध गोष्ठियों एवं गुरुकुलों में संपन्न होती थी। हालाँकि गुरुकुलों में दी जाने वाली शिक्षा उपदेशात्मक ही थी जो एक तरह से व्याख्यान या वाचिक का ही रूप थी। बाद में वर्णाश्रम व्यवस्था के कठोर नियमों ने इस परम्परा को क्षीण कर दिया। वैसे तो समस्त चिंतन एवं दार्शनिक मतों की उत्पत्ति वेदों से हुई है और वेदों को 'अपौरुषेय' कहा गया है जो किसी व्यक्ति के द्वारा सृजित नहीं है। इसको केवल श्रुतियों के द्वारा यानी कानों से सुना गया है। अर्थात् सामान्य जनमानस के हृदय में ईश्वर की आराधना एवं अनुष्ठान कर्मकाण्ड आदि का व्यावहारिक ज्ञान वाचिक धरोहर के रूप में पहले से विद्यमान था। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार-''अग्नेर्वा ऋग्वेदो जायते वयोर्यजुवेदः सुर्यात सामवेदः।''[8] यानि अग्नि ऋषि से ऋक्, वायु ऋषि से यजु, और सूर्य ऋषि से सामवेद का ज्ञान मिला। अडगिरस ऋषि से अथर्ववेद का ज्ञान मिला। इनसे ब्रह्मा जैसे ऋषियों ने चारों वेद सीखा और अन्य विद्वानों में प्रचारित किया। परम्परा में ब्रह्मा के चतुर्मुख होने का भी यही कारण माना जाता है।

भारतीय मनीषियों ने उर्वर मस्तिष्क से जिस कर्म ज्ञान और भक्तिमय त्रिपथगा का प्रवाह उद्गत किया। उसने दूर-दूर के मानवों के आध्यात्मिक कल्मष को धोकर उन्हें पवित्र नित्य शुद्ध-बुद्ध और सदा स्वच्छ बनाकर मानवता के विकास में योगदान दिया है। भारतीय दर्शन को आस्तिक एवं नास्तिक दो भागों में विभक्त किया गया है। आस्तिक भाग में महर्षि गौतम का न्याय दर्शन, कणाद का वैशेषिक दर्शन, कपिल का सांख्य दर्शन, पतंजलि का योग दर्शन एवं व्यास का वेदांत दर्शन आदि हैं। नास्तिक भाग में चार्वाक, बौद्ध, और जैन दार्शनिक आते हैं। इन विभिन्न दार्शनिकों ने अपने मतों का प्रचार-प्रसार अधिकाँशतः शास्त्रों के रूप में किया। लेकिन यह भी मानना पड़ेगा कि इन शास्त्रों के अलावा उनके उपदेशों, शास्त्रार्थों, आध्यात्मिक विचारों का एक रूप मौखिक भी था। हालाँकि यह प्रक्रिया उस समय एक जाति, वर्ग विशेष के लिए ही उपयोगी थी। क्योंकि

वर्णाश्रम व्यवस्था ने समाज में हर वर्ग, जाति, सम्प्रदाय को ये छूट नहीं दे रखी थी। खासकर आस्तिक विचारों के आचार्यों, ऋषियों, महात्माओं के यहाँ ऐसा प्रावधान था। आज भी समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग क्यों ऐसे संसाधनों से दूर रहा? क्यों आज इन प्राचीन स्रोत ग्रंथों में वर्णित भारत के गौरवशाली अतीत से वह हिचकिचाता है? क्यों आज भी वेदों, उपनिषदों, पुराणों को एक खास वर्ग ही ऐतिहासिक धरोहर के रूप में उपयोग करता है? आज संस्कृत भाषा भी एक खास धरोहर के रूप में इस्तेमाल की जाती है। कुछ समाज ज्ञान-विज्ञान के इस व्यापक स्रोत तत्त्वों से आखिर क्यों वंचित रह गया? दरअसल विभिन्न अनुष्ठानों, क्रियाव्यापारों, कर्मकाण्डों, असंख्य ग्रंथ निर्मितियों के बाढ़ में इन महान प्राचीन वेदों के आगे एक ऊँची दीवार खड़ी कर दी गई थी। ताकि ये हर किसी के लिए सुलभ न हो सके। भारतीय दर्शन में आस्तिक व नास्तिक विचारकों ने एक युगांतकारी परिवर्तन करने का प्रयास किया। आस्तिक विचारकों ने जहाँ केवल ज्ञान के सैद्धांतिक चिंतन पर बल देते हुए अनेक ग्रंथ लिखे। वहीं नास्तिक विचारकों में महात्मा बुद्ध एवं महावीर स्वामी ने ज्ञान के व्यावहारिक चिंतन पर बल देते हुए ग्रंथों से ज्यादा वाचिक परम्परा के सहारे ज्ञान का प्रचार-प्रसार किया। महावीर स्वामी के पूर्व 23 'तीर्थंकर' हो चुके थे। महावीर स्वामी, गौतम बुद्ध के समकालीन थे। दोनों का समय ई. पू. छठी शताब्दी माना जाता है। इन्होंने वेदों से स्वतंत्र एक नवीन धार्मिक परम्परा का प्रवर्तन किया। इनका मौलिक साहित्य महावीर और बुद्ध के उपदेशों के रूप में है जो क्रमशः प्राकृत और पालि की लोक भाषाओं में मिलता है। महावीर स्वामी के उपदेश 41 सूत्रों में संकलित हैं जो 'जैनागमों' में मिलते हैं। सिद्धसेन दिवाकर, हरिभद्र, मेस्तुंग आदि जैन दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य हैं। बौद्ध दर्शन तीन पिटकों में संकलित है- सुत्त पिटक, विनय पिटक, अभिधम्म पिटक। अनात्मवादी होने के कारण बौद्ध धर्म का वेदांत से विरोध हुआ। वैभाषिक और सौत्रांतिक मत हीनयान परम्परा में हैं। योगाचार और माध्यमिक मत महायान परम्परा में है। इसमें वसुबंधु, कुमारलात, मैत्रेय, नागार्जुन आदि प्रमुख आचार्य थे। इसी तरह संतों की वाणी को सुनकर उन्हें बाद में लिपिबद्ध कर 'गुरुग्रंथ' नाम दिया गया जबकि लगभग सभी संतों ने अपने उपदेश पहले-पहल मौखिक या वाचिक रूप में दिया था।

इन धार्मिक ग्रंथों में विचारों के अवलोकनार्थ हम भारतीय आदिवासी समाज के बीच आज भी भारतीय ज्ञान परम्परा और मौखिक परम्परा को देख सकते हैं। उन्होंने आयुर्वेद, योग, आखेट, हस्तकला आदि के द्वारा आज भी इस भारतीय ज्ञान परम्परा को जीवित रखते हुए न केवल भारतीयता की अवधारणा को स्पष्ट किया है। पुरखों की कहावतों, लोक गीतों, लोक कथाओं, मुहावरों, की वाचिक परम्परा जनजातीय समाज में भरी पड़ी हैं अपनी इस वाचिक परम्परा को जनजातीय लोग 'पुरखा साहित्य' कह

कर पुकारते हैं। वंदना टेटे लिखती हैं "आदिम आदिवासी भाषाएँ अलिखित, फिर भी उनके पास समृद्ध पुरखौती वाचिक साहित्य की थाती है...अलिखित समाजों की भाषा संस्कृति, कला साहित्य, ज्ञान-विज्ञान, धर्म परंपरा और जीवनानुभव उसके पुरखौती साहित्य में संगृहीत होता है।"[9] रमणिका गुप्त लिखती हैं "आदिवासी साहित्य अपने संगठन की वजह से पिछले पाँच हजार वर्षों से जिन्दा है। आज आदिवासी साहित्य 90 भाषाओं में लिखा जा रहा है। यहाँ तक कि यह लेखन हिंदी में भी प्रचुर मात्रा में हो रहा है।"[10]

एक बार पुनः हम भाषागत भारतीय ज्ञान परम्परा एवं उसकी वाचिक विरासत का अध्ययन करें तो विश्व में अनुमानतः आज 6000 से 7000 भाषाएँ बोली जाती हैं और आज भी कई ऐसी भाषाएँ हैं जो भाषाशास्त्रियों के आँखों से ओझल हैं। भाषा विज्ञान में विश्व की ज्ञात भाषाओं को चार खंडों तथा 18 उपखंडों में विभक्त किया गया है। भारोपीय परिवार की भाषा में 10 भाषाएँ ऐसी हैं जो एक-दूसरे से समानता रखती हैं। 1786 ई. में सर विलियम जोन्स ने संस्कृत भाषा का अध्ययन करते हुए संस्कृत की लैटिन और ग्रीक से अनेक अंशों में समानता बताई है। वह लिखते हैं ''The Sanskrit language, whatever may be its antiquity, is of a wonderful structure ; more perfect than the Greek, more copious than the Latin, and more exquisitely refined than either ; yet bearing to both of them a stronger affinity, both in the roots of verbs and in the forms of grammar "[11] अर्थात् संस्कृत भाषा एक अद्भुत संरचना है; जो प्राचीन होने के साथ-साथ ग्रीक से अधिक परिपूर्ण, लैटिन की तुलना में अधिक प्रचुर, और अधिक से अधिक परिष्कृत रूप से परिष्कृत; और आज भी यह एक मजबूत आत्मीयता के संबंध में दोनों क्रियाओं की जड़ों और व्याकरण के रूपों में मानी जाती हैं।

मूलतः भारोपीय परिवार की सभी भाषाओं का जनक आर्यों को माना जाता है। मैक्समूलर के अनुसार 'आर्यों का भारत में आगमन 1500 ई.पू. हुआ था।' इनका मूल निवास आल्पस पर्वत के पूर्वी भाग में स्थित यूरेशिया का था। भारत से ही कुछ आर्य ईरान, यूनान, रोम, जर्मनी आदि क्षेत्रों में चले गए। भारत में वैदिक काल का प्रारम्भ भी यहीं से शुरू हो जाता है। वैदिक काल की भाषा संस्कृत थी। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के अस्तित्व का भी पता इसी काल से होने लगता है। आर्यों की अपनी भाषा एवं अपनी राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक, शैक्षणिक आदि नीतियां थीं। भारत में आर्यों की भाषा को मूलतः प्राचीन, मध्य व आधुनिक आर्यभाषा के रूप में वर्गीकृत

किया गया है। प्राचीन आर्यभाषा काल (1500 ई.पू.- 500ई.पू.) की भाषा संस्कृत थी, जिसके दो रूप थे, वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत। कालांतर में लौकिक संस्कृत से परिवर्तित होकर भाषा पालि हो गई जो मध्य कालीन आर्यभाषा (500 ई. पू. - 1 ई.) के अंतर्गत आती है। पुनः 1 ई. आते-आते पालि विकसित होते हुए प्राकृत (500 ई. तक) के रूप में आई। गौरतलब है कि ये भाषाएँ सामान्यतः बोलचाल की भाषा थी। 500 ई.-1000 ई. का समय अपभ्रंश काल का है। जिसमें कई क्षेत्रीय बोलियाँ जैसे शौरसेनी, पैशाची, ब्राचड़, महाराष्ट्री, मागधी, और अर्धमागधी हैं। आगे चलकर आधुनिक आर्यभाषा (1000 ई.) के अंतर्गत इन क्षेत्रीय बोलियों से हिंदी भाषा के उद्भव और उसके विकास को पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, राजस्थानी, बिहारी हिंदी और पहाड़ी हिंदी बोलियों में वर्गीकृत किया गया। भाषा विकास की इस लम्बी परम्परा में बोलियों ने ही बार-बार अपना रूप बदला है। ये बोलियां प्रारम्भिक स्वरूप में पूर्णतः मौखिक ही थीं।

निष्कर्ष:

कुल मिलाकर भारतीय ज्ञान परम्परा में वाचिकता के स्रोत प्राचीन काल के सभी धार्मिक व दार्शनिक ग्रंथों में मिलते हैं। धार्मिक व दार्शनिक ग्रंथों की अवधारणा स्पष्ट होने से पहले ही जनमानस के मन मस्तिष्क में जीवन, जगत और मानवीय भावना जैसे विचार विद्यमान थे। आवश्यक था कि उसे किसी माध्यम से समाज में अभिव्यक्त कर देने की। वाचिकता ही ऐसा माध्यम थी जिसके सहारे पहली बार यह संभावना प्रकट हुई। साथ ही इस ज्ञान परम्परा के ऐतिहासिक, पुरातात्विक एवं भाषाई दृष्टिकोण के आधार पर हम कह सकते हैं कि भारतीय ज्ञान परम्परा के प्रतिमान अत्यंत व्यापक हैं जिसमें एक नए अध्ययन व दृष्टिकोण की आवश्यकता हो सकती है। साथ ही अशोक चक्रधर भारत की वाचिक परम्परा के सन्दर्भ में जो कहते हैं वह भी यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि ''वाचिक परम्परा को समझना इस देश की उस श्रुति परम्परा को जानना है जिसके सहारे तमाम वेदों, मानस समेत कथाएँ और मिथकमयी सामाजिक व्यथाएं कंठ दर कंठ, कर्ण दर कर्ण यात्राएं करती हुई हम तक आती हैं। वाचिक परम्परा इस देश के मिजाज में है।''[12] अतः यहाँ यह भी स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है कि केवल वाचिक परम्परा ही नहीं बल्कि भारतीय ज्ञान परम्परा भी इस देश के मिजाज में है।

Reference:

1. ऋग्वेद, मंडल 10, सूक्त 125, मंत्र 5
2. विद्या निवास मिश्र, अनछुए बिंदु, पृष्ठ संख्या 385
3. सं. विष्णु खरे, महाकाव्य विमर्श, लेखक, देवी प्रसाद मिश्र (शीर्षक, जातीय जीवन की महाकथा, विशेष कालेवाला), पृष्ठ संख्या 38
4. दैनिक भास्कर, नेटवर्क 1 जुलाई 14, 2017, 3:20 am IST
5. विद्या निवास मिश्र, अनछुए बिंदु, पृष्ठ संख्या 386
6. राजशेखर, काव्यमीमांसा, आप्तवचन, 20
7. http://hindi.webdunia.com/sanatan-dharma-history/ancient-indian-scientist 115032500018_1.html, वेब दुनिया, प्राचीन भारत के आविष्कारक एक लेख
8. शतपथ ब्राह्मण, लेखक याज्ञवल्क्य, 14.9.4.33
9. वंदना टेटे, आदिवासी साहित्य परम्परा और प्रयोजन, पृष्ठ सं 38
10. सं रमणिका गुप्त, आदिवासी साहित्य यात्रा, पृष्ठ सं 5
11. ए शार्ट हिस्ट्री आफ लिंग्विस्टिक, लेखक आर. एच. रोबीन पृ. सं 134
12. कवि सम्मेलन ब्लाग, https://chakradhar.in/kavi-sammelan/ एक होता है शब्द, एक होती है परम्परा, लेखक अशोक चक्रधर, 1 जुलाई 2018, समय 2:30 pm

Funding:
This study was not funded by any grant.

Conflict of interest:

The Authors have no conflict of interest to declare that they are relevant to the content of this article.

About the License:

© The Authors 2024. The text of this article is open access and licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.